Chapter-7

सप्तम-अध्याय

गद्य-सौष्ठव

"गोस्वामी हरिराय जी ने गद्य की अधिकांश शैलियों को स्पर्श किया है। उनके वार्ता-साहित्य में कहानीतत्व, एकांकी व नाटकतत्व, उपन्यासतत्व, समालोचनातत्व तथा व्याख्यातत्व सभी स्वरूपों के दर्शन होते हैं।"

गोस्वामी हरिराय जी जिस प्रकार एक प्रसिद्ध कवि रहे थे, उसी प्रकार वे एक कुशल गद्य-कार भी थे। हिन्दी में व्रजभाषा-गद्य के स्वरूप एवं विकास पर अनेक विद्वानों ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। इनमें से कुछ विद्वानों को छोड़कर अन्य सभी ने गोस्वामी हरिराय जी की उपेक्षा ही की है। आचार्य शुक्ल, मिश्रबन्धु, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानों ने जहाँ भी वार्ता-साहित्य का उल्लेख किया है, वहाँ महाप्रभु जी, गुसाईं जी एवं गोकुलनाथ जी तक ही वे सीमित रहे हैं। "वास्तव में व्रजभाषा गद्य के परिष्करण का जो श्रेय गोस्वामी हरिराय जी को दिया जाना चाहिये, वह गोकुलनाथ जी को दिया गया है।(१)अ

कुछ विद्वानों ने ब्रजभाषा-गद्य का सर्वांगीण अध्ययन व परीक्षण करके गोस्वामी हरिराय जी को व्रजभाषा-गद्य निर्माण का सर्वाधिक श्रेय दिया है। इन विद्वानों में श्री द्वारका दास परिख[१], श्री प्रभुदयाल मीतल[२], डा० हरिहर नाथ टंडन[३], नागरी प्रचारिणी सभा के खोज-कर्त्ता[४], हरिमोहन श्री वास्तव[५] आदि का नाम लिया जा सकता है।

---

(१)अ-देखिये- गद्य साहित्य का उद्भव और विकास, -सम्पा० डा० शंभूनाथ पांडेय, -पृ० ३५

(१) - चौरासी वैष्णवन की वार्ता, अग्रवाल प्रेस, मथुरा से प्रकाशित।

(२) - "सूरदास की वार्ता" तथा "अष्टछाप परिचय" में।

(३) - वार्ता साहित्य, एक बृहद् अध्ययन-अलीगढ़ से प्रकाशित।

(४) - हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण।

(५) - मध्य-कालीन हिन्दी गद्य।

सर्व प्रथम श्री द्वारका दास परिख ने 'प्राचीन वार्ता रहस्य' भाग-१ का संवत् १९९६ में कांकरौली विद्याविभाग से प्रकाशन कराके, हिन्दी संसार को गोस्वामी हरिराय जी की गद्य-रचनाओं से परिचित कराया। श्री प्रभुदयाल मीतल ने अपने प्रकाशन से गोस्वामी हरिराय जी सम्बन्धित दो ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं - प्रथम ग्रन्थ है 'गोस्वामी हरिराय जी का पद्य-साहित्य', जिसकी भूमिका में उन्होंने गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-ग्रन्थों का उल्लेख किया है। दूसरा ग्रन्थ है -'सूरदास की वार्ता', जो चौरासी वार्ताओं में से ही एक वार्ता का पृथक् प्रकाशन है। मीतल जी ने 'सूरदास की वार्ता' में गोस्वामी हरिराय जी के व्रजभाषा गद्य का अच्छा विश्लेषण किया है, इसमें व्रजभाषा-गद्य के क्रमिक विकास में गोस्वामी हरिराय जी के युग को व्रजभाषा-गद्य का स्वर्णयुग माना है।१ श्री मीतल जी के इस कथन का समर्थन श्री हरिमोहन श्रीवास्तव ने भी इन शब्दों में किया है, ' इन्होंने व्रजभाषा की सर्वांगीण उन्नति की। वास्तव में हरिराय जी के युग को ही ब्रजभाषा गद्य का स्वर्णयुग कह सकते हैं। २ डा० हरिहर नाथ टंडन ने अपने शोध ग्रन्थ, 'वार्ता-साहित्य एक बृहद् अध्ययन' में निष्कर्ष रूप में स्पष्ट किया है कि श्री हरिराय जी को ही चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताओं के 'भावात्मक-संस्करण' प्रस्तुत करने का श्रेय है। विद्वान लेखक ने अनेक पुष्ट तर्कों द्वारा यह भी सिद्ध किया है कि 'वार्ताओं' का भावात्मक संस्करण 'टीका' नहीं स्वतंत्र ग्रन्थ है।३ इन्होंने अनेक प्रमाणों से यह भी सिद्ध किया है, कि दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के लेखक गो० हरिराय जी ही हैं। ४

डा० हरिहर नाथ टंडन ने गोस्वामी हरिराय जी कृत 'चौरासी वार्ता- भाव-प्रकाश', 'दो सौ बावन वार्ता, भाव-प्रकाश' तथा 'पुष्टि-दृढ़ाव' आदि कुछ ग्रन्थों का विश्लेषण किया है, इनमें चौरासी वार्ता तथा दो सौ बावन वार्ता पर अधिक ध्यान दिया गया है। इन वार्ताओं का महत्व, भाषा-

---

(१) सूरदास की वार्ता, पृ० ७८।

(२) मध्यकालीन हिन्दी गद्य, श्रीहरिमोहन श्रीवास्तव, पृ० ८४।

(३) वार्ता साहित्य एक बृहद् अध्ययन, पृ० ६३८।

(४) वही, पृ० २३०।

सम्बन्धी विशेषताएं, शब्द, शैली आदि का भी पूर्ण विवेचन श्री टंडन जी ने किया है। प्रस्तुत अध्याय में इन चर्चित ग्रन्थों को छोड़कर अन्य गद्य ग्रन्थों की विशेषताएं स्पष्ट करना ही अभिप्रेत है। इस संदर्भ में गोस्वामी हरिराय जी के गद्य ग्रन्थों की भाषा के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत हैं।

-:: भाषा ::-

जहाँ तक गोस्वामी हरिराय जी के गद्य ग्रन्थों की भाषा का प्रश्न है, वह विशुद्ध ब्रजभाषा है। गोस्वामी हरिराय जी ने ब्रजभाषा में लिखते हुए प्रसंगवश उर्दू एवं खड़ी बोली को भी संस्पर्शित किया है। ये प्रयोग उनकी विचार-वाहिनी के सहज प्रवाह में स्वाभाविक रूप से ही सम्पन्न हुए हैं। खड़ी बोली के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

"ब्राह्मन ऐसे ही होते हैं। जो सहज की बात ऊपर रूठ जाते हैं। - - - - - उनने दो पद दीक्षित जी के गाए हैं। सो मैंने इतना कह्यो। जो जब देसाधिपति सुन पावेंगे तब कहा जबाव दोगे - - - - - जो बीरबल। तेरे प्रोहित ने झूंठ कहा।"[१]

प्रारम्भिक खड़ी बोली का यह परिष्कृत रूप है। शब्द और भावों का तारतम्य एक गति में बहता चला आता है। उपर्युक्त गद्यांश में केवल 'कह्यो' क्रिया-पद ब्रजभाषा का है, इससे इतर सभी स्थलों पर क्रिया, कारण आदि शब्दों का प्रयोग शुद्ध खड़ी बोली के अनुरूप ही हुआ है।

अधिकांश विद्वानों ने खड़ी बोली का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी से माना है, इससे पहिले के ब्रजभाषा गद्य को वे महत्वपूर्ण स्वीकार नहीं करते। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में, 'उन्नीसवीं शताब्दी

---

(१) गो० हरिराय जी प्रणीत-दो सौ बावन वैष्णवन की बार्ता, भाग-३ पृ० २९५ - सम्पादक गो० ब्रजभूषण शर्मा व द्वारकादास परिख।

का पूर्वार्द्ध गद्य के जन्म और विकास के लिए महत्वपूर्ण है । इससे पहले गद्य-साहित्य का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हो चुका था, मैथिल, ब्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ी बोली में बहुत सी रचनाएं इस शताब्दी के पहले की मिलती हैं, परन्तु वास्तव में इस शताब्दी के पूर्व का गद्य साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है।१ गोस्वामी हरिराय जी के ब्रजभाषा गद्य-ग्रन्थों में खड़ी बोली के इस प्रकार के प्रयोगों के पीछे निश्चय ही एक पुष्ट पृष्ठ-भूमि रही होगी । ये प्रयोग उस समय की खड़ी बोली के प्रचलित स्वरूप को स्पष्ट करते हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी ने प्रसंगवश अपने गद्य ग्रन्थों में कुछ विशेष स्थलों पर खड़ी बोली को उर्दू का रूप भी दिया है । यह प्रभाव उनके समय की परिस्थितियों से ग्रहण किया गया होगा । 'पृष्ठ-भूमि' नामक अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी का युग विदेशी प्रभुत्व का युग था, भारतीय-संस्कृति में मुगल-संस्कृति समन्वित होती जा रही थी । अत: गोस्वामी हरिराय जी की भाषा में भी यह प्रभाव पड़ा । फारसी मिश्रित खड़ी बोली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

> "लोधी सिकंदर बादशाह ने तत्क्षण रुस्तम अली को बुलायकें सब वृतान्त पूंछ के कह्या । पहिले कसूर तेरा है । तैंने क्या जाना हिन्दू में ऐसा करामाती-फकीर नहीं होगा । सो सब आखों से देख और अपना यंत्र जल्दी मंगायले । कभी किसी के मजहब पर निगाह मत करना"।२

इस प्रकार के वर्णनों में गोस्वामी हरिराय जी ने प्रसंगवश कागद, सदर, खबर, फकीर, हजूर, हाकम, बादशाह, कामदार आदि शब्दों का प्रयोग भाषा को

---

(१) हिन्दी साहित्य, डा० रामरतन भटनागर, पृष्ठ- १६६

(२) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता, प्रका० नाथद्वारा, सं० २०२५, पृ० १२ ।

सहज रूप प्रदान करने के लिए ही किया है। विशेष प्रयोजन को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है :-

'मन्हे, श्रीनाथ जी एक लहुआ आप्यो हतो'।१ (गुजराती)
'आघा संभाल के अह्यो मैं हैं राजपूतानी छां'।२ (मारवाड़ी)

गोस्वामी हरिराय जी ने गुजराती एवं मारवाड़ी में पद्य रचना भी की हैं, जिनकी चर्चा अन्यत्र कर आए हैं। इस प्रकार के प्रयोगों से गोस्वामी हरिराय जी के विविध भाषाओं के अध्ययन का ज्ञान होता है। गोस्वामी हरिराय जी संस्कृत साहित्य के विद्वान थे, फलत: भाषा पर उनका अधिकार था। उन्होंने अपने गद्य की भाषा को सुष्ठु रूप प्रदान करने के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। उनके रचित वार्ता-साहित्य में कुछ विशेष शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जो पुष्टि सम्प्रदाय के व्यावहारिक जीवन में अधिकांश प्रयुक्त होते हैं, इनमें अनोसर, अपरस, आरोगानो, इहांताई, उहांई, उत्थापन, एकली, खबास, फांपी दोय सौ, तबकड़ी, राजभोग आदि अधिक प्रयोग हुए हैं। डा० हरिहर नाथ टण्डन ने अपने शोध प्रबन्ध में इस प्रकार के शब्दों की एक लम्बी सूची दी है।३ संस्कृत-तत्सम शब्दों का प्रयोग 'ब्रह्मस्वरूपाख्यान' तथा 'द्विदलात्मक स्वरूप विचार' नामक ग्रन्थों में अधिक हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

"ब्रह्म के स्वरूप तीन, क्षर, अक्षर, अक्षरातीत। तहां प्रथम अक्षरातीत को व्याख्यान करत हैं। तहां मार्ग तीन -पुष्टि, प्रवाह, मर्यादा। पुष्टि-मार्ग अक्षरातीत को मार्ग है। पुष्टि मार्ग के स्वामी अक्षरातीत हैं। पूर्णानन्द गोवर्द्धन धरन परब्रह्म

---

(१) देखिये-- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता सम्पा० गो० ब्रजभूषण शर्मा तथा द्वारकादास परिख, भाग-३, पृष्ठ-१८

(२) वही।

(३) देखिये-- वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन, पृष्ठ- ५७५।

श्रीकृष्ण जिनके धाम में जीव जाय सदा आनन्द में रहें। रासादि को सुख देखें फिर जन्म न होय - - - -'।१

" कोटि कंदर्प लावन्य। साक्षात्कार रसात्मकं आनन्द मात्र कटपादं मुखोदरादि। ऐसे जो पूर्ण पुरुषोत्तम। सो प्रथम एक रस रूप आप ही हते। और श्री स्वामिनी जी संग अन्तरीय लीला को अनुभव करते। पर वाह्य प्रागट्य न हुते"।२

इस प्रकार के तत्सम शब्दों से युक्त भाषा सुष्ठु रूप ग्रहण करती है। उपर्युक्त गद्यांश निश्चय ही ब्रजभाषा का परिष्कृततम गद्य है, जो अपनी परम्परा में सर्वथा बे-जोड़ रहा है। गद्य का इतना परिमार्जित व सुसंस्कृत रूप न तो इनके पूर्ववर्ती लेखकों के कृतित्व में विद्यमान है, और न ही गद्य के इस उत्कृष्ट रूप की रक्षा उनके परवर्ती गद्य लेखक ही कर सके हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने तद्भव व तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग कर अपना पांडित्य प्रदर्शन नहीं किया, अपितु उन्होंने भावानुरूप गद्य के स्वरूप को निरूपित किया है। भाव के अनुरूप उन्होंने अनेक शैलियों में अपने विचार व्यक्त किए हैं। विचारों को जैसे भी सुस्पष्ट बनाया जा सकता था उन्होंने बनाने का यत्न किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने देशी-विदेशी अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी भाषा अनेक शैलियों को अपने में समाविष्ट किए हुए हैं।

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट-भारती, सात्वती, आरभटी तथा कैशिकी चार प्रवृत्तियों के पश्चात् रीतिशास्त्र

---

(१) ब्रह्मस्वरूपाख्यान, रतनलाल गो० से प्राप्त प्रति का प्रारम्भिक अंश।

(२) 'द्विदलात्मक स्वरूप विचार' वही।

के आचार्य वामन द्वारा वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी आदि प्रवृतियाँ, जिन्हें आज की शब्दावलि में शैलियाँ कहा जाता है, भारतीय वाङ्मय के ऐतिहासिक-क्रम में प्रचलित थीं, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी के समय तक ये सभी प्रवृत्तियाँ वीतराग के संदर्भ बन चुके थे। उस समय के साहित्य सृष्टाओं के समक्ष ये सभी प्रवृत्तियाँ धूमिल पड़ चुकी थीं। यद्यपि आज की समृद्ध खड़ी बोली में जिन विविध शैलियों का विनिश्चय, वर्तमान आलोच्य- दृष्टि में समाहित है, उनका समुचित व व्यवस्थित स्वरूपांकन गोस्वामी हरिराय जी के युग तक नहीं हो पाया था, फिर भी गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-साहित्य की समृद्धता में हम उन सभी शैलियों के व्यवस्थित रूप पाते हैं जो आज की आलोच्य - उर्वरा में प्रजनित मानी जाती हैं। अत: गोस्वामी हरिराय जी के गद्य में व्यवहृत इन्हीं शैलियों का समाकलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

गद्य की दृष्टि से प्रमुख शैलियाँ छे: मानी गई है,:-
विचारात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, कथात्मक, आत्मव्यंजक तथा गवेषणात्मक।१ इनके अतिरिक्त उपदेशात्मक व तथ्यनिरूपणात्मक शैली भी प्रयुक्त होती हैं। गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-साहित्य में इन सभी शैलियों को अपनाया गया है।

—:: शैली ::—

१- विचारात्मक शैली:-

विचारात्मक शैली के दो रूप पाए जाते हैं, निगमन शैली तथा आगमन शैली। जहाँ किसी सिद्धान्त की बात उपस्थित करके, उसके लिए अनेक तर्कों की सिद्धि के लिए दृष्टान्त प्रस्तुत किए जाते हैं, वहाँ निगमन शैली होती है, तथा जिसमें अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करके उनमें कोई

---

(१) वाङ्मय विमर्श-- ले० आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ- ५६।

सिद्धान्त निकाला जाय वहाँ आगमन शैली कही जाती है ।१ गोस्वामी हरिराय जी के गद्य में इनके कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :-

(अ) निगमन शैली :- गोस्वामी हरिराय जी ने अपने गहन दार्शनिक व सैद्धान्तिक विचारों को सहज ग्राह्य बनाने के लिए प्राय: इस शैली को ग्रहण किया है, यथा--

" पाछें वैष्णव को पत्थर की टेक राखनी । अरु संसार रूपी समुद्र में पाषाण प्रगट होत हैं । संसार रूपी जल भर्यो है । तामें वे पत्थर होय कें रहें । तो भीतर जल स्पर्श न करें । तो भीतर की अग्नी को बचाव होयबे परि पूर्ण वैष्णव है । तातें जल भेदत नहीं है । हृदय में श्री आचार्य जी बसत हैं । श्री आचार्य जी अग्नि रूप हैं । सो वैष्णव हृदय में राखत है । ताको श्री आचार्य जी को खटो भरोसो है । ऐसे उत्तम वैष्णव को संग कीजे तो सुगम पड़े । श्री आचार्य जी अग्नी रूप हैं । सो अग्नी ऊँची है । तापर धरिये तो परिपक्के करें । अरु नवनीत जैसे स्वभाव कोमल है । श्री आचार्य जी अग्नी रूप हैं । ताते उनकों आसरों होई तो माखन मिटि कें घी होइ । आपनो रूप फिरे तैसें लौकिक मिट कै घी वैष्णव होइ" ।१ गोस्वामी हरिराय जी ने यहाँ वैष्णवों के आचरण संबंधी मान्यताओं को पुष्ट करने के लिए 'पाषाण' का उदाहरण प्रस्तुत किया है । 'पाषाण' के गुण एवं धर्म की व्याख्या करते हुए लेखक ने एक आदर्श, वैष्णव-समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है, जिससे निगमन-शैली का निर्वाह हुआ है । इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है :-

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव की वार्ता-- सम्पा० निरंजन देव शर्मा प्रका० मथुरा सं० २०२२ पृष्ठ- १३ ।

" वैष्णव की काहू कूं चटक लागै तो वैष्णव होय, जैसें कीट कौं भ्रमरी के काटे को ध्यान रहत हैं, सो कीट घणो । मिटके भ्रमरी होय । तैसें तालशी वैष्णव भगवद्वार्ता करे ते, एक चित्त सू वाको ध्यान करे तो वैष्णव होय । फेर वैष्णव कौं वैष्णव पने की टेक राखनी । पपैया की तरह जैसे घन बूंद तो लेइ परि भूमि को पर्यो न लेइ । और सीप समुद्र में रहत है । परि स्वांति बूंद लेइ । परि समुद्र के जल को पान न करे"। १

(आ) आगमन-शैली :- जब तुलसी ने कह्यो । अंगूठा के से काट्यो जाय ? ।। तब पद्मनाभदास ने कह्यो । श्री आचार्य जी के सेवक पर तन मन धन न्यौछावरि करिए । सो सगाई कैसें फेरि जाइ ? ।। या प्रकार तुलसी को मारग को अभिप्राय बताए" ।२

यहाँ लेखक ने 'अंगूठा काटने' के दृष्टान्त से मार्ग के अभिप्राय को स्पष्ट करने का यत्न किया है जिससे आगमन शैली का निर्वाह हुआ है । इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है:-

"या में यह जतारए, जो-रंच सेवा साग की माधोदास दीनता सो किये । ताते श्री ठाकुर जी प्रीति सौं आरोगै यह तब जानिए, जो वैष्णव प्रसाद लेइ सराहना करैं । तब दोऊ सेवा सिद्ध होय और भगवदीय समान उदार कोऊ नाँही, जो रंच साग की

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव की वार्ता-- सम्पा० निरंजन देव शर्मा प्रका० मथुरा सं० २०२२ पृष्ठ- १६ ।

(२) प्राचीन वार्ता रहस्य-- (भाव-प्रकाश) प्रथम भाग सम्पा० द्वारकादास परिख संवत्, १९९६, पृष्ठ- १५५ ।

सेवा किये जनम- जनम को संसार मिटाइ हरिभक्त कर दिये" ।१

गोस्वामी हरिराय जी ने विचारात्मक शैली को अधिक अपनाया है । अपने सिद्धान्त के गूढ़तम विचारों को अनेक रूप में सहज बनाने के लिए उन्होंने निगमन व आगमन शैली को ग्रहण किया है ।

२- वर्णनात्मक शैली :-

वर्णनात्मक शैली दो स्वरूप में प्रयुक्त होती है संश्लिष्ट वर्णन के रूप में तथा असंश्लिष्ट वर्णन के रूप में । संश्लिष्ट वर्णन वह है, जिसमें किसी स्थान, वस्तु या व्यक्ति का वर्णन इस ढंग से किया जाता है, जिससे उसका दृश्य उपस्थित हो जाता है । इससे इतर जहाँ केवल फुटकर नाम ही गिनाए जाएं वहाँ असंश्लिष्ट वर्णन कहा जाता है ।२

(अ) संश्लिष्ट वर्णन :- सो आगरे के बाजार में एक बेस्या नृत्य करत हती । सब लोग नृत्य को तमासो देखत हते । सो कृष्णदास हू तमासे में ठाड़े भए । तब भीड़ सटकि गई । तब वह बेस्या कृष्णदास के आगे नृत्य करन लागी - - - - सो वह बेस्या बोहोत सुन्दर गावे, नृत्य करे सो हू बोहोत आधे करें" ।३

"कुंभनदास जी तनिया पहरे फटी भेली पाग, पिछोरा, टूटे जोड़ा सहित देसाधिपति के आगे जाय ठाड़े भए" ।४

---

(१) चौरासी वैष्णव की वार्ता- गो० हरिराय जी प्रणीत, सम्पा० द्वारकादास परिख, तृ० संस्क० पृष्ठ- ८३

(२) वाङ्मय- विमर्श- लेखक आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र०संस्क० पृ० ५६

(३) नित्यभावना से उद्धृत- क्रिया विभाग, काकरौली बंध १०४, पु०सं० ७

(४) प्राचीन वार्ता रहस्य, भाग-२ सम्पा० पो० कंठमणि शास्त्री, द्वितीय- -- संस्क०, पृष्ठ- ३८४ ।

लेखक ने यहाँ कुछ ही शब्दों में कुंभन दास जी का समस्त व्यक्तित्व ही अंकित कर दिया है, यह लेखक के अभिव्यक्ति सामर्थ का परिचायक है, जिसमें वर्णनात्मक शैली का संश्लिष्ट वर्णन देखा जा सकता है ।

(आ) असंश्लिष्ट वर्णन :- " एक पाथो नामक गूजरी गाठ्यौली की अपने पुत्र के लिए छाक ले जात हती तामैं सूं बलात्कार सूं दोय रोटी श्रीनाथ जी छिहाय के आरोगे । ऐसैं ही एक खेमो गूजरी गोवर्द्धन की दही बेचने को जात हती सो दान घाटी ऊपर श्री वैकुण्ठ मिले ---" ।१

३- भावात्मक:-

भावात्मक शैली के भी दो भेद स्वीकार किए गए हैं, धारा शैली एवं तरंग शैली । जहाँ भाव की व्यंजना आदि से अन्त तक निरंतर होती रहती है, वहाँ धारा शैली का प्रयोग समझना चाहिये और जहाँ बीच में भाव की व्यंजना हो जाया करती है, वहाँ तरंग शैली होती है ।२

(अ) धारा शैली:- गोस्वामी हरिराय जी की गद्य रचनाओं में भावात्मक शैली का प्राधान्य है । यही कारण है कि उनके ग्रन्थों के नाम भी 'भावना' से जाने जाते हैं, यथा -सेवा-भावना, उत्सव-भावना, छाकबीरी की भावना, आदि । भावना-ग्रन्थों में उन्होंने धारा शैली को अधिक अपनाया है । यह स्वरूप उनकी 'वार्ताओं' में निहित भाव-प्रकाश के रूप में अधिक प्रयोग हुआ है ।

---

(१) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता- प्र० नाथद्वारा- पृष्ठ- १६ ।
(२) वाङ्मय विमर्श- आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ- ६० ।

गोस्वामी हरिराय जी ने चौरासी व दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता को 'तीन जन्म' के वृत्तान्त से जोड़कर भावों को सुस्पष्ट करने की चेष्टा की है। इसमें 'लीला-भावना' नामक वृतान्त निश्चय ही वार्ता साहित्य में उनकी मौलिक शैली को स्थापित करता है। डा० हरिहर नाथ टण्डन ने इस संदर्भ में लिखा है, 'वैष्णवों के स्वरूप की लीला-भावना का सर्व प्रथम सूत्रपात करने का श्रेय इस शैली पर गोस्वामी हरिराय जी को है।'[१] इस शैली में एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

"सो पुरषोत्तम जोसी लीला में विसाखा जी की सखी हैं। 'गुनचूड़ा' इनको नाम है।। और पुरषोत्तम जोसी की स्त्री 'गुनचूड़ा' की सखी हैं। सो 'दुर्वासा' इनको नाम है।"[२]

"सो गज्जन श्री चन्द्रावली जी की सखी, लीला में 'सुभआनना' इनको नाम है। सो श्री ठाकुर जी प्रगटे ताके दूसरे दिन ये प्रगटी हैं।"[३]

गोस्वामी हरिराय जी ने अन्य स्थलों पर श्री कृष्ण की अलौकिक लीला वर्णन में भी धारा शैली को ही अपनाया है :-

"इहाँ श्री बल्देव जी श्री ठाकुर जी सों कहे जो तुमने मेरा कों श्री यशोदा जी के आगे झूंठो कियो। मैं तुम्हारे संग कबहू खेलन कों न चलूंगो, तब श्री ठाकुर जी ने श्री बल्देव जी सों कही। जो हे दाऊजी। तुम तो सदाँई साचे हो परन्तु तुम घर के हो। दोइ बात कहीं तो चिन्ता नाँही पर बाहिर

---

(१) वार्ता-साहित्य एक वृहद् अध्ययन- पृष्ठ- १३४

(२) चौरासी वैष्णवन की वार्ता- पृष्ठ- १६४

(३) वशंत होरी की भावना, प्रका० मथुरा, संवत्- २०२५, पृष्ठ- १७।

सौं आवैं ताको सनमान करयौ ही चाहिये`।१

``स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना``, वर्षोत्सव की भावना आदि भावना-ग्रन्थों में इस शैली का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।

(आ) तरंग शैली :- ``जैसे श्री ठाकुर जी को अधर बिंब-आरक्त है। रस रूप है तैसें ही श्री स्वामिनी जी के चरण-कमल अत्यन्त आरक्त हैं। तिन चरण कमल कौं मैं बारंबार नमस्कार करत हौं``।२

४- कथात्मक शैली :-

विद्वानों ने वार्ता साहित्य के तीन जन्म की लीला के प्रसंग को `जातक - कथा` के अनुरूप स्वीकार किया है।३ वैसे भी वार्ता शब्द का राजस्थानी भाषा में प्रचलित `बात` शब्द से घनिष्ट सम्बन्ध है। राजस्थानी भाषा में ढ़ोला मारू री वार्ता आदि वार्ताएं कथा रूप में ही रची गई हैं। संस्कृत में चाहे वार्ता शब्द का अर्थ भिन्न रहा हो,४ तथापि हिन्दी में प्रयुक्त वार्ता `बात-चीत` से ही संबंधित है। वार्ता

---

(१) चरण चिन्ह की भावना, प्रका० जबलपुर, पृष्ठ- ११।

(२) वही, पृष्ठ- १३।

(३) वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन, पृष्ठ- ६३७।

(४) ``वार्ता कामसूत्रं शिल्पशास्त्रं दण्डनीतिरिति। पूर्वैः सहष्टादश विद्या-स्थानानि`` इत्यपरे। अर्थात् वार्ता, कामसूत्र, शिल्पशास्त्र और दण्ड-नीति इन चार विद्याओं को जोड़ देने से अठारह विद्याएं हो जाती हैं। ------ बृहस्पति के मत में दो वार्ताएं हैं, दण्डनीति और वार्ता। (वार्ता दण्डनीतिश्च विद्या इति बार्हस्पत्याः)---`कृषि पाशु पाल्य वणिज्या च वार्ता` - - - । -- काव्य मीमांसा, राजशेखर, पृ० ९ से ११।

साहित्य का वृत्त भी बात-चीत की भाषा में कथाओं का सम्पादन ही है। गो० हरिराय जी ने इस कथा वृत्त को 'पंहिताऊपन' में न कह कर सम्प्रदाय में प्रयुक्त व्यावहारिक भाषा में ही कहा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है:-

> "सो वा ठौर एक बड़ौ नगरसेठ हतो। सो क्षत्री हतो। वाके चार बेटा हते। और सबते छोटे दामोदर दास हते। सो उन चारौ भाइन नैं विचार कियौ। जो होइ तौ यह द्रव्य अपनौ अपनौ चारौ भाई बांटि लेई। काहे ते जो द्रव्य है सो क्लेस कौ मूल है। पाछे हमारे आपस में हित न रहैगौ। दामोदर दास तौ छोटे हते। सो इन सौं कहे। क्यौं बाबा तू अपने वटि कौ द्रव्य लेईगौ? तब दामोदर दास कहे। मैं तौ कछू समझत नाहीं। तुम बड़े हौ। आछो जानौ सो करौ। तब इनने द्रव्य सब घर में सूं काढ़ी"।१

गो० हरिराय जी के काव्य में जहाँ कथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, वहाँ छोटे-छोटे वाक्यों में कथन व्यक्त किया गया है। कथा-प्रसंग को वार्तालाप के माध्यम से और भी सरल बनाने का यत्न किया गया है। अलौकिक घटनाओं के योग से कथा में चमत्कृति भी उत्पन्न की गई है। कथा के अन्त में कवि 'या को आसय' कह कर अपने उद्देश्य को भी स्पष्ट कर देता है।

५- आत्म व्यंजक :-

आत्म व्यंजक शैली में कवि ने अपने विचारों को यथास्थल प्रमुख स्थान देते हुए व्यक्त किया है। प्राय: वार्ताओं में बीच-बीच में भी लेखक ने अपने विशेष-विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं :-

---

(१) प्राचीन वार्ता रहस्य, कांकरौली, भाग-१, पृष्ठ- २८।

``सो यह वार्ता में भगवदीय कौं बड़ी बड़ाई दी है । काहे ते, भगवदीय भक्ति मुक्ति के दाता हैं। चाहैं तो तत्काल श्री ठाकुर जी सौं मिलाय दैं । यह तो पुत्र, तुच्छ फल कहा ? तहाँ अर्थ यह है जो पुत्र लौकिक नाँही दिये । परम भगवदीय पुत्र दिए । सो पुत्र श्री गुसाईं जी कौ सेवक होइ, सगरे कुल कौ आगे कल्याण करेगो । ताते भगवदीय जो दैय सो अलौकिक देई, लौकिक देई तो नाँही दिये बराबर हैं`।१

प्रस्तुत गद्यांश में गोस्वामी हरिराय जी ने वैष्णवों की महत्ता का प्रतिपादन किया है । उनकी वार्ताओं का यह एक मुख्य उद्देश्य रहा है । अन्य स्थल पर उन्होंने ऐसे ही वाक्यों का प्रयोग किया है, यथा :-

`श्री आचार्य जी के सेवक पर तन-मन-धन न्यौछावर करिए`।२

अपनी पद रचनाओं में भी उन्होंने इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं :-

`हौं बारी इन वल्लभियन पर`।३

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने स्थान-स्थान पर अपने विचारों को भी सोद्देश्य `आत्मव्यंजक शैली` में प्रकट किया है ।

उपर्युक्त शैलियों के अतिरिक्त कुछ और भी विशिष्ट शैलियाँ गोस्वामी हरिराय जी के गद्य साहित्य में उपलब्ध होती हैं । इनमें उपदेशात्मक, तथ्यनिरूपण प्रधान, तथा गवेषणात्मक आदि शैलियाँ प्रधान रूप से उपलब्ध होती हैं ।

---

(१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, पृष्ठ- २४६ ।
(२) प्राचीन वार्ता रहस्य, क्रिया विभाग कांकरौली, भाग-१,पृ० १५५ ।
(३) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ६४१ ।

उपदेशात्मक शैली :-

यह शैली गोस्वामी हरिराय जी के आचार्य रूप को उजागर करती है। इसमें लेखक ने एक कुशल उपदेष्टा की भाँति श्रोताओं तथा पाठकों को अपने उद्गारों से परिचित कराया है। कुछ उदाहरण इसी प्रकार के द्रष्टव्य हैं :-

" या मार्ग और या मार्ग की क्रिया सब फल रूप हैं। परन्तु श्री महाप्रभु तथा श्री मत् प्रभु को सम्बन्ध दृढ़ राखि व्रजभक्तन के भाव सों क्रिया करैं तब भक्ति फलरूप होय, अरु अलौकिक लीलानुभाव वेगि ही प्रभु दान करैं या में सन्देह नाँहीं।" १

" जाको अंग पुष्टि अंगीकार होयगो सो जानैंगो। जीव कों उद्यम करनो। उत्तम भगवदीय की संगति मिलनों अरु वाके करे को विश्वास राखनो। जब विश्वास उपजे तब जानियैं जो श्रीजी नैं कृपा करी ----।" २

तथ्यनिरूपण प्रधान शैली :-

गोस्वामी हरिराय जी ने इस शैली में अपने कथ्य का अभिप्राय इस प्रकार से व्यक्त किया है।--

'सो तैसे ही यह श्री भागवत रूप पुष्टि मार्ग है। सो या को अधिकारी निरपेक्ष होय ताही के माथे यह मार्ग होइ। और जाकों अधिकार पाए, अहंकार बढ़े, सो ताको कछू फल सिद्ध न होइ।' ३

---

(१) उत्सव भावना, निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बन्ध सं० ४६, पु० ४, पत्रा-१७
(२) पुष्टि दृढ़ाव की वार्ता- मथुरा से प्रका० सं० २०२५, पृष्ठ- १
(३) प्राचीन वार्ता रहस्य, कांकरौली, भाग-२, पृष्ठ- ४४१।

तथ्य निरूपण प्रधान शैली में गोस्वामी हरिराय जी ने तर्क-शैली को भी ग्रहण किया है । यथा :-

> ``तहाँ यह संदेह होइ, जो ठाकुर जी ताती क्यों आरोगे ? जगन्नाथ जोशी सों क्यों न कहे ? तहाँ यह जाननो, जो जा दिन तें जगन्नाथ जोसी के मन में थार छूइवे की असंभावना भई ता दिन ते बहुत अनुभव न करावते । इनकी प्रीत सों आरोगते ।`` १

इनके गद्य-साहित्य में गवेषणात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है । वैसे तो समस्त वार्ता-साहित्य में निहित उनका `भाव-प्रकाश` उनकी स्वयं की गवेषणा ही है, जिनके द्वारा उन्होंने अधूरे व संदेहास्पद प्रसंगों को सुस्पष्ट किया है और इसके लिए निश्चय ही उन्होंने यथा सम्भव शोध करके सामग्री संकलन की होगी । जहाँ भी इस प्रकार की जानकारी इन्होंने दी है, वहाँ प्रमुख रूप से गवेषणात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है । इसके अतिरिक्त जहाँ उन्होंने सम्प्रदाय के ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत किए हैं, वहाँ भी इस शैली को देखा जा सकता है ।

`श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता` में सामग्री संकलन के सूत्रों के विषय में पहले ही उद्घोषित कर देते हैं, ``अब श्री गोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य को प्रकार तथा प्रकट होय के जो जो चरित्र भूमि लोक में कीने सो श्री गोकुलनाथ जी के वचनामृतादिक समूहन में तें उद्धार करि के न्यारे लिखत हैं ।`` २

इसी आधार पर वे आगे कीसभी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हैं, यथा--

---

(१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता,- पृष्ठ- १६६ ।

(२) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता- संस्क०, नाथद्वारा, पृष्ठ- १ ।

``मिती आसौज सुदी १५ शुक्रबार सम्बत् १७२६ के पाछिलौ पहर रात्रि को श्री वल्लभ जी महाराज पना सिद्ध कराये और आरोगा ए पाछे रथ हाँके सो चले नहीं``।१

अन्य स्थलों पर उन्होंने वार्तागत संदेह की पुष्टि के लिए प्रमुख-प्रमाणों सहित संदेह निवारण भी किया है :-

`यह वार्ता में बोहोत संदेह है। जो-सेठ सेवा छाँड़ि कैं दक्षिण क्यों गए ? तहाँ कहत हैं, जो सेठ के मन में यह आई, जो दक्षिण में श्री आचार्य जी को जनम है। सो जनम-स्थान के दर्शन करि आऊँ, ताकि लिए दक्षिण गए`।२

``और`नामरत्न` ग्रन्थ श्री रघुनाथ जी श्री गुसाईं जी के लाल जी किये हैं। तामें कहैं हैं- `विप्रदारिद्र्यदावाग्नि`। ब्राह्मण को दारिद्र रूप जो काष्ट ताके दावाग्नि (सो) बुझावन हारे। तातें यह नाम प्रगट करन (अर्थ) ब्राह्मण को बहोत समाधान करि द्रव्यादिक दे विदा करते``।३

उपर्युक्त सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी का ब्रजभाषा गद्य परिमार्जित तथा अनेक शैलियों से समन्वित था। जहाँ जिस शैली में अभिप्राय प्रकट हो सकता था वहाँ उसी शैली का निर्वाह मिलता है। भावों के प्रस्तुती-करण में निश्चय ही उन्होंने कुशलता का परिचय दिया है। गोस्वामी हरिराय जी ने अपने भाषा-सौष्ठव से ब्रजभाषा-गद्य को साहित्य की भाषा बनने का गौरव प्रदान किया। उनसे पहिले का ब्रजभाषा-गद्य-साहित्य अत्यल्प परिमाण में ही था और उसमें भी गोस्वामी हरिराय जी

---

(१)श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता, प्रका० नाथद्वारा, पृष्ठ- ५२ ।
(२)चौरासी वैष्णवन की वार्ता, प्रकाशन-मथुरा, पृष्ठ- ६२ ।
(३)वही, पृष्ठ- २६४ ।

के गद्य की भाँति उत्कृष्टता तथा गरिमा का सर्वथा अभाव था । अत: गो० हरिराय जी का समय ब्रजभाषा गद्य के परिष्करण का युग था ।

ब्रजभाषा गद्य का सर्वांगीण विकास महाप्रभु वल्लभाचार्य के परवर्ती काल में ही हुआ था । एक ओर सूर ने सागर रच कर ब्रजभाषा को काव्य की भाषा बनाने का श्रेय प्राप्त किया तो दूसरी ओर गोस्वामी हरिराय जी ने ब्रजभाषा गद्य का चतुर्मुखी विकास कर साहित्य में गद्य के महत्व को प्रतिपादित किया । उन्होंने अपने पूर्वज आचार्यों के अपूर्ण ग्रन्थों को पूर्ण व परिष्कृत रूप प्रदान किया । भाव-प्रकाश नामक टिप्पणी निश्चय ही उनकी शोध वृत्ति को प्रदर्शित करती है ।

उपर्युक्त विविध उद्धरणों से जाना जा सकता है, कि गोस्वामी हरिराय जी ने भाषा को भावानुकूल ही प्रवाहित किया है, जिसमें विचार-नौकाएँ मन्थर-मन्थर गति से सन्देह और कौतूहल के पाटों को पाटती हुई प्रतिभाषित होती हैं ।लेखन में शब्द योजना में अपने दीर्घ अनुभव और वृहद् अध्ययन का भी संकेत किया है । गोस्वामी हरिराय जी बहुभाषा-विज्ञ थे । उनका गद्य एवं पद्य में समान अधिकार था । ब्रज-भाषा गद्य में उनके ग्रन्थों के परिमाण को देखते हुए कहा जा सकता है, कि शायद ही किसी धर्म-सम्प्रदाय की प्राचीरों में निबद्ध किसी साहित्यकार ने इतने गद्य-ग्रन्थों की रचना की हो ।

ब्रजभाषा-गद्य के क्षेत्र में 'भाव-प्रकाश' उनकी एक मौलिक देन है । यह मुख्य ग्रन्थ से संलग्न रहते हुए भी अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है । वार्ताओं के व्यवस्थित रूप को देखकर लेखक के सम्पादन-कौशल का भी परिचय प्राप्त होता है । इतिहास-प्रधान ग्रन्थों में लेखक की शोध-दृष्टि निश्चय ही तीक्ष्ण रही है । भावना-प्रधान ग्रन्थों में गोस्वामी हरिराय जी की वाणी हृदय से निकली है, जिसमें भावों के रंग-बिरंगे फूल झर-झर झरते रहे हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी के गद्य के प्रस्तुत विवेचन से कहा जा सकता है कि इनका समय यथार्थ रूप से ब्रजभाषा - गद्य का स्वर्ण-युग था, क्योंकि भाषा का यह परिमार्जित रूप न तो उनसे पूर्व की कृतियों में प्राप्त होता है और न ही उनके पश्चात् की रचनाओं में। गोस्वामी हरिराय जी के पश्चात् कुछ ही विद्वानों ने ब्रजभाषा - गद्य में लिखने का उत्साह प्रकट किया था, अन्यथा इस ओर प्रयास मन्द पड़ता ही चला गया। आज ब्रजभाषा-गद्य विगत की स्मृतियाँ ही हैं। न गोस्वामी हरिराय जी जैसे उद्भट लेखक ही रहे और न ही इस क्षेत्र में उत्साह प्रकट करने वाले पाठक।

गोस्वामी हरिराय जी ने गद्य की अधिकांश शैलियों को स्पर्श किया है। उनके वार्ता-साहित्य में कहानी तत्त्व, एकांकी व नाटक तत्व, लेखतत्व, उपन्यास तत्व, समालोचना तत्व, व्याख्या-तत्व आदि सभी स्वरूपों के दर्शन होते हैं।

अब तक के समस्त अध्ययन से गोस्वामी हरिराय जी के सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्य पर प्रकाश डाला जा चुका है। विविध उदाहरणों से गोस्वामी हरिराय जी के कवि और लेखक, उभय-रूपों की सम्पन्नता स्पष्ट की जा चुकी है। अगले अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य में प्रतिबिंबित उनके भक्ति सिद्धान्त एवं दार्शनिक विचारों का अध्ययन भी करलेना अपेक्षित जान पड़ता है, क्योंकि इसके अभाव में कवि के साहित्य की गरिमा स्पष्ट नहीं हो पाती है, और न विद्वान आचार्य की साहित्यिक छवि ही उघर पाती है।